इकाई 13 प्रथम विश्व युद्ध : कारण एवं परिणाम

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- विश्व इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना के रूप में प्रथम विश्व युद्ध के महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- 1914 की भयावह परिस्थिति के कारणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- इस युद्ध में शामिल देशों तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, दोनों पर युद्ध के परिणामों के विषय में जान सकेंगे,
- भारत पर युद्ध के प्रभावों के विभिन्न पक्षों को समझ सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के विषय पर जानकारी प्राप्त करते समय सर्वप्रथम यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह युद्ध 19वीं शताब्दी के अंतिम दो-तीन दशकों में यूरोप तथा विश्व के अन्य भागों में होने वाले घटना क्रम का परिणाम था, इन पृष्ठों पर आपके समझ यह स्पष्ट हो सकेगा कि यद्यपि यह केवल एक युद्ध था किंतु अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर इसका अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। इस युद्ध ने उस समय के अनेक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक संरचनाओं को ध्वस्त कर दिया। यहाँ हमारा मुख्य उद्देश्य इस युद्ध के मुख्य कारणों एवं परिणामों से आपको अवगत कराना है।

13.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण

प्रथम विश्व युद्ध के कारण इतने पेचीदे हैं कि उनकी यथोचित व्याख्या करने का अर्थ होगा यूरोप का 1870 के बाद की राजनैतिक कूटनीति का इतिहास लिखना। दरअसल इसके कारण

ढूँढ़ने की प्रक्रिया में हमें 1789 अथवा लुई XIV के समय तक भी जाना पड़ सकता है। इस युद्ध के कारणों की गहराई में जाने के लिए यूरोप के विभिन्न देशों के अंतर्गत काफी लंबे समय तक क्रियाशील रहने वाली विभिन्न शक्तियों एवं प्रवृत्तियों की संयुक्ता पर दृष्टिपात करना होगा। आइए, हम प्रथम विश्व युद्ध के कुछ मुख्य कारणों पर विचार करें।

13.2.1 गुप्त संधि प्रणाली

इस युद्ध का बुनियादी कारण गुप्त संधि प्रणाली था। दरअसल यह प्रणाली विस्मार्क की देन थी जिसने 1870 के फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के बाद जर्मनी के शत्रु देशों के विरुद्ध इस प्रकार की संधि का तंत्र तैयार करने का प्रयास किया, इस कदम ने धीरे-धीरे यूरोप को हथियार बंद विरोधी खेमों में बाँट दिया जो कि एक दूसरे से टकराते रहे। जैसा कि अनुमान लगाया जा सकता है कि संधि प्रणाली कुछ अवसरों पर एक खेमे के सभी सदस्यों के बीच शांति स्थापित करने में सहायक रही। तथा साथ ही मित्र तथा सहयोगी गुटों पर युद्ध आरंभ करने पर भी रोक लगाती रही। तथापि इस प्रणाली के कारण युद्ध आरंभ हो जाने की परिस्थिति में यूरोप की सभी शक्तियों का युद्ध में शामिल होना अवश्यभावी हो गया।

सन् 1871 से 1890 तक विस्मार्क यूरोपीय राजनीति का सूत्रधार रहा। नए जर्मन साम्राज्य के चांसलर के रूप में वह शांति चाहता था। उसने घोषणा की कि जर्मनी एक "संतुष्ट" राष्ट्र है। वह जानता था कि युद्ध जो कि जर्मनी को शक्ति तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्व दे सका है, यदि पुनः छिड़ गया तो उसकी बर्बादी का ही कारण बनेगा। अतः बिस्मार्क यथा स्थिति तथा गुप्त गठबंधन प्रणाली के फलस्वरूप उभरे शक्ति संतुलन का बनाए रखने का समर्थक बन गया। वह जानता था कि फ्रांस, विशेषकर 1870 के अपमान के बाद, जर्मनी का ऐसा कट्टर शत्रु बन चुका था जिससे समझौता करना संभव नहीं था। अतएव बिस्मार्क ने अपनी सारी कूटनीतिक क्षमता एवं राजनैतिक अंतर्दृष्टि जर्मनी की रक्षा के लिए संधि तैयार करने में लगा दी। फ्रांस जर्मनी का शत्रु था तथा बिस्मार्क की सफलता फ्रांस के कूटनीतिक अलगाव में थी। इसी नीति का अनुसरण करते हुए जर्मनी ने 1879 में आस्ट्रिया के साथ इस दोतरफा बचनबद्धता के साथ संधि की कि यदि रूस दोनों में से किसी भी एक शक्ति पर आक्रमण करता है तो दूसरा उसकी सुरक्षा में सहयोग देगा। तीन वर्ष बाद सन् 1882 में बिस्मार्क ने ट्यूनिस के मुद्दे पर चली आ रही फ्रांस-इटली शत्रुता को बढ़ावा दिया तथा इटली को आस्ट्रिया के साथ चली आ रही पुश्तैनी शत्रुता समाप्त करने के लिए प्रेरित किया। सन् 1882 में जर्मनी, इटली एवं आस्ट्रिया के मध्य एक तीन पक्षीय गुप्त संधि एक ओर फ्रांस तथा दूसरी और रूस के विरुद्ध रक्षात्मक संधि के रूप में की गयी।

फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के बाद से फ्रांस शक्तिहीन हो चुका था। यह मजबूत संधि उसके लिए काफी बड़ी समस्या प्रस्तुत कर रही थी। जब तक बिस्मार्क शक्ति का केंद्र रहा उसने शक्ति संतुलन की प्रणाली बनाए रखी जिसे उसने 1887 में रूस के साथ पुनर्रक्षा संधि के साथ पूरा किया। फ्रांस का शेष यूरोप से अलगाव बढ़ता ही जा.रहा था। किंतु 1890 के बाद जब बिस्मार्क जर्मनी का चांसलर न रहा तो उसके उत्तराधिकारियों ने उसकी कौशल पूर्ण कूटनीतिज्ञता का रास्ता छोड़ दिया। बर्लिन कांग्रेस में पूर्वीय प्रश्न के समाधान को लेकर रूस एव जर्मनी के संबंधों में कुछ कटुता आई। फ्रांस ने इस नयी परिस्थिति का लाभ उठाया एवं सावधानीपूर्वक कार्य करते हुए 1891 में रूस के साथ संधि बनाने में सफलता पायी। इस प्रकार द्विपक्षीय संधि तैयार हुई जिसने न केवल फ्रांस के अलगाव को समाप्त किया बल्कि तीनपक्षीय संधि के समक्ष प्रतिवादी शक्ति के रूप में उभरी। जर्मनी में बिस्मार्क की कूटनीति के समापन के साथ ब्रिटेन के कूटनीतिज्ञों में नीति को लेकर पुर्नविचार आरंभ हुआ। जर्मन सम्राट की दृष्टि में यह "तथ्य" ठीक नहीं था कि "जर्मनी" एक "संतुष्ट" शक्ति है। इस विचार के साथ उसने विश्व साम्राज्य स्थापित करने की नीति की घोषणा की। उसने यह भी घोषणा की कि जर्मनी का भविष्य समुद्रों पर आधारित है। जर्मनी की यह नीति ब्रिटेन के लिए चेतावनीपूर्ण थी जिसने उसे "श्रेष्ठ अलगाव" से बाहर आने पर मजबूर किया और उसे द्विपक्षीय गठजोड़ के निकट लाया। ब्रिटेन में फ्रांस के साथ सारे मतभेद समाप्त करते हुए मित्रवत् गठजोड़ (Entente Cordiace) पर समझौता किया। उसके बाद इसी प्रकार का समझौता 1907 में रूस के साथ किया। इस प्रकार फ्रांस, रूस एव इंग्लैंड ने तीन पक्षीय मित्र गठजोड़ (Triple Entente) के नाम से एक अलग राजनैतिक संधि तैयार की। तीनपक्षीय मित्र गठजोड (Triple Entente) के तीन पक्षीय संधि (Triple Alliance) के साथ टकराने के

साथ ही यूरोप की स्थिति ''हथियार बंद शांति'' समान हो गयी। यूरोप की महाद्वीपीय शक्तियाँ हालाँकी एक-दूसरे के साथ युद्ध तो नहीं कर रही थीं लेकिन अपने पड़ोसियों के प्रति ईर्ष्यालु रुख अपना रही थीं, जिसके कारण यूरोप के पूरे वातावरण में डर एवं शंका के बादल मँडरा रहे थे। सभी शक्तियाँ किसी बड़े टकराव की शंका से ग्रस्त होकर तेजी से सैन्यीकरण करती जा रही थी जो कि यूरोप के दो विरोधी खेमों में बँट जाने का परिणाम था। यूरोप के दो विरोधी हथियार बंद खेमों में बँट जाने को साम्राज्यवाद के उद्भव एवं विकास के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। यह वैसी परिस्थिति थी जिसमें यूरोपीय देश व्यापार एवं सीमाओं के विस्तार में तेजी से आगे बढ़ने के लिए तत्पर होकर नए-नए उपनिवेश तैयार कर रहे थे और इसी प्रक्रिया में एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे थे। जाहिर है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी भौतिक शक्ति सिद्ध करने की दृष्टि से अपने को सैन्यशक्ति एवं राजनैतिक निपुणता में श्रेष्ठ बनाना आवश्यक था।

13.2.2 सैन्यवाद

सैन्यीकरण दरअसल गुप्त समझौतों की प्रणाली से सीधे जुड़ा हुआ था एवं युद्ध का दूसरा महत्वपूर्ण कारण था। बड़ी संख्या में सेनाएं रखना दरअसल क्रांति के दौरान फ्रांस से शुरू हुआ था और बाद के दिनों में नैपोलियन के आधीन बढ़ता गया। जर्मनी के एकीकरण के दौरान बिस्मार्क ने इस नीति का प्रभावशाली ढंग से विस्तार एवं विकास किया। 1870 के फ्रैंको-प्रशियन युद्ध के बाद सभी महाशक्तियों ने अधिक से अधिक मात्रा में सैनिक एवं समुद्री हथियार बढ़ाने आरंभ कर दिए। हथियारों की यह दौड़ सुरक्षा के नाम पर तीव्र की जा रही थी। इसके कारण राष्ट्रों के बीच भय एवं शंका का वातावरण बन गया। यदि किसी एक देश ने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ायी अथवा किसी विशेष स्थान पर रेलवे लाइने बिछाने का कार्य किया तो उसके पड़ोसी देश तुरंत डरकर वही कार्य स्वयं करने लगते। यह सिलसिला निरंतर चलता रहा एवं प्रतिदिन हथियारों का जमाव बढ़ता गया। यह कार्य 1912-13 के बालकान युद्धों के बाद और भी तेज हो गया। ऐंग्लो-जर्मन समुद्री शत्रुता भी युद्ध का एक कारण बना।

सैन्यीकरण के फलस्वरूप थल एवं समुद्री सेना कार्य हेतु मानवीय संसाधनों के रूप में कार्यकर्त्ताओं की एक बड़ी संख्या भी आवश्यक थी जो कि मनोवैज्ञानिक रूप से शीघ्र युद्ध की ''अनिवार्यता'' में ढाले जाते थे। इन लोगों के लिए युद्ध शीघ्र पदोन्नति एवं महत्व के दरवाजे खोलने वाला था। ऐसा नहीं है कि वे अपने नीजि स्वार्थों के लिए ही युद्ध चाहते थे, फिर भी युद्ध की सारी तैयारी को व्यवहार में लाने के अवसर की चाह ने अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव अवश्य ही छोड़ा होगा।

13.2.3 राष्ट्रवाद

युद्ध का अन्य महत्वपूर्ण कारण पूरे यूरोप में चलने वाली राष्ट्रवाद की लहर थी। यह राष्ट्रवाद दरअसल फ्रांसीसी क्रांति की देन थी। इटली एवं जर्मनी ने अपने-अपने देशों में राष्ट्रवाद के अभूतपूर्व उद्भव को एक मजबूत राजनैतिक शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया। इटली एवं जर्मनी का एकीकरण इसीलिए संभव हो सका क्योंकि कैवर (Cavour) एवं बिस्मार्क राष्ट्रवादी चेतना उभारने में सफल रहे थे। साथ ही इसी प्रक्रिया में लोगों के अंदर जातीय गर्व की भावना का भी विकास होने लगा। और वे अपने देशों को शेष देशों से ऊपर एवं बेहतर समझने लगे जिसके कारण उनका शेष देशों, विशेषकर पड़ोसी देशों के साथ अहंकारपूर्ण व्यवहार दिखाना स्वाभाविक ही था। राष्ट्रवादी भावना की अति ने राष्ट्रों के बीच पहले से बनी हुई खाई को और गहरा कर दिया। उदाहरण के लिए जर्मनी एवं ब्रिटेन जैसे राष्ट्रों के बीच बढ़ी हुयी शत्रुता के पीछे इस अति राष्ट्रवादी चेतना का काफी बड़ा हाथ रहा। इसके परिणामस्वरूप इन राष्ट्रों के बीच थल एवं जल सैन्यीकरण की होड़ और तेज हो गयी। इसी आक्रामक राष्ट्रवादी भावना के कारण एशिया, अफ्रीका एवं बालकान में अपने-अपने स्वार्थों को लेकर यूरोपीय शक्तियाँ आपस में एक दूसरे से टकरा रही थीं। फ्रांसीसी जनता की इसी आक्रामक राष्ट्रवादी भावना के कारण ही उनके अंदर अल्सस एवं लोरेन की क्षति को लेकर बदले की भावना बनी रही, जिसने फ्रांस को जर्मनी का सबसे बडा शत्रु बना दिया। 1886 के बाद फ्रांस एवं जर्मनी के संबंध निरंतर तनावपूर्ण बने रहे। नैपोलियन III के साथ वह पीड़ित राष्ट्रीय जनमत था जो प्रशिया की शक्ति के प्रति ईर्ष्या की भावना में और भी कटुता ला रहा था। अंधी राष्ट्रवादिता के उभार के परिणामस्वरूप

1870 में फ्रैंको-प्रशियन युद्ध छिड़ा एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में लोकप्रिय पागलपन का एक नया दौर शुरु हुआ। इसी दौरान अधूरी इटली का भी नारा उठा जो कि आस्ट्रिया से इतालवी भाषी वेरिस्ते एवं त्रैंतिनों जिले हड़पने की इटली राष्ट्रवादी आकाक्षां की अभिव्यक्ति थी। इसके लिए इटली ने जर्मनी से सहयोग मांगा।

जार साम्राज्य के पश्चिम में विद्रोही राष्ट्र विद्यमान थे। 1870 के बाद पोल एवं यूकरेनियाई, लिथूनियाई एवं फिन जातियाँ जार साम्राज्य से मुक्त होने के जबरदस्त प्रयास कर रही थीं। इन राष्ट्रों के प्रति रूस की नीति, विशेषकर अलेक्जैंडर III के आधीन 1881-1894 के दौरान, इनके रूसीकरण का जोरदार प्रयास रहा। जिसके नतीजे में इन राष्ट्रीय समूहों के सबसे अधिक देशभक्त तत्व रूसी सामाजिक क्रांतिकारियों की ओर आकर्षित हुए जिन्होंने तुरंत ही पूरे क्षेत्र में संबंध स्थापित कर लिए। इन स्थानीय आंदोलनों में कट्टरवादी भावनाएँ निहित थीं जो कि इस दौरान अपने उत्थान पर थीं।

अंततोगत्वा, असंतुष्ट बालकान जनता की असंतुष्ट राष्ट्रीय आकाक्षांओं ने बालकान प्रायद्वीप को बारूद का ढेर बना दिया जिसने पूरे यूरोप को तुरंत ही अपनी आग के घेरे में ले लिया। वास्तव में युद्ध की ओर धकलने वाली तमाम घटनाओं के पीछे राष्ट्रवाद की ही प्रेरक भावना थी।

13.2.4 साम्राज्यवाद की अपनी आवश्यकताएँ

हमारे उद्देश्य के संबंध में साम्राज्यवाद का अर्थ एकक्षत्र पंूजीवादी दौर में विश्वस्तर पर पूंजीवादी संचय है, साम्राज्यवाद ने उत्पादन में निरंतर वृद्धि को बढ़ावा दिया जिसके कारण संबद्ध राष्ट्र नए बाजारों एवं कच्चे माल के स्रोतों की खोज में जुट गए। परिणामतः इस होड़ में लगी जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई जिसका एक हिस्सा विश्व के उन हिस्सों में जाने के लिए तत्पर था जिन पर अभी किसी का अधिकार नहीं था। औद्योगिक क्रांति के कारण बचत पूंजी में भी वृद्धि हुई जो कि देश से बाहर निवेश की जा सकती थी। इस स्थिति ने आर्थिक शोषण एवं राजनैतिक स्पर्धा को तेज कर दिया। इन तमाम घटनाओं के कारण महान शक्तियों ने चीन में स्वतंत्र प्रभाव क्षेत्र के रूप में क्षेत्र प्राप्त करने के लिए तुर्की एवं अन्य स्थानों में रेलमार्ग बनाने के लिए आपस में अफ्रीका का विभाजन आरंभ कर दिया। 19वीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बाजारों, कच्चे माल तथा उपनिवेशों के लिए संघर्ष और भी तेज हो गया क्योंकि जर्मनी और इटली भी 19वीं शताब्दी के अंतिम दो-तीन दशकों में इस होड़ में शामिल हो गए। 1914 तक यूरोप की सभी महान्शक्तियों ने अफ्रीका का कोई न कोई हिस्सा प्राप्त कर लिया था। रेलमार्ग बनाने में, जोकि आर्थिक साम्राज्यवाद का सबसे अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि इसमें आर्थिक लाभ के साथ-साथ राजनैतिक पक्ष भी शामिल होता है, इंग्लैंड के रेलमार्ग केप से केरो तक फैल गए, रूस ने साइबेरिया तक तथा जर्मनी ने बगदाद रेलमार्ग तैयार कर लिए। प्रथम रेलमार्ग जर्मन, फ्रांसीसी एवं बेल्जियम हितों से टकराया, दूसरे ने रूस-जापान युद्ध में भूमिका निभाई तथा तीसरे के कारण जर्मनी तथा तीनपक्षीय मित्र संधि के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहा।

सामान्यतः किसी देश के साम्राज्यवादी रुख अपनाने के पीछे आर्थिक हित और उसके साथ जुड़े हुए राजनैतिक उद्देश्य छिपे होते थे। उपनिवेश प्राप्त करने की देशों की नीति के पीछे कुछ प्रभावशाली, क्रियाशील राजनैतिक नेताओं का हाथ होता था जो इस दिशा में सोचते अन्यथा उपनिवेश प्राप्त करने की अनिवार्यता नहीं होती थी। ब्रिटेन ने 1860 के दशक में अथवा 1870 के दशक में और इसके बाद भी उपनिवेश प्राप्त करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया यद्यपि कि जनसंख्या, निर्यात एवं पूंजी बचत की आर्थिक आवश्यकताएँ लंबे समय से बनी हुई थीं। इटली एवं रूस में से किसी के पास भी निर्यात के लिए अतिरिक्त उत्पादन अथवा पूंजी नहीं थीं फिर भी वे उपनिवेश प्राप्त करने की होड़ में लग गए। जर्मनी जो कि औद्योगिक रूप से फ्रांस से कहीं आगे था। बिस्मार्क की उपनिवेश विरोधी नीति के कारण उपनिवेश प्राप्त करने की दौड़ में धीमा रहा। बिस्मार्क जर्मनी को केवल यूरोप की ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में देखना चाहता था। दरअसल साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के पीछे कुछ ही लोगों की सोच थी जिनमें विशेषकर, बुद्धिजीवी, अर्थशास्त्री, देशभक्त पत्रकार एवं राजनीतिज्ञ शामिल थे जो इस नीति का प्रचार कर रहे थे।

साम्राज्यवाद के राजनैतिक उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य पक्ष भी शामिल थे जो उपनिवेश

प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रेरित कर रहे थे। इनमें से एक पक्ष तो अन्वेषणकर्ताओं एवं साहसिक गतिविधियों में लगे लोगों की वैज्ञानिक खोजों में रुचि अथवा साहस एवं जोखिम भरे कार्यों के प्रति रूझान अथवा धन एवं शक्ति और प्रभाव की लालसा रखता था। उपनिवेशवाद को बढ़ावा देने में ईसाई मिशनरियों की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध डेविड लिविंगस्टोन था जोकि लंदन मिशनरी सोसाइटी द्वारा अफ्रीका भेजा गया था। लगभग सभी यूरोपीय शक्तियों ने पूरे अफ्रीका एवं एशिया में इन मिशनरियों की गतिविधियों में हिस्सा लिया। अन्य मुख्य ईसाई मिशनरियों जिन्होंने बड़े पैमाने पर अफ्रीका में अपनी भूमिका निभाई वे चार्ल्स गॉर्डन, सन जॉन कर्क एवं लार्ड लुगार्ड थे।

13.2.5 समाचार पत्र, प्रेस एवं जनमत

महायुद्ध का अन्य मुख्य कारण पूरे यूरोप में समाचार पत्रों द्वारा जनमत को प्रदूषित करना था। समाचार पत्र अक्सर विदेशों की स्थिति को तोड़-मरोड़ कर अपने देश के अंदर राष्ट्रवादी भावनाएँ उभारते थे। कई मौकों पर जबकि कठिन अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर शांतिपूर्ण समाधान संभव हो सकते थे, इन समाचार पत्रों के इस प्रकार के रवैये के कारण टकराव की संभावना रखने वाले देशों के अंदर स्थिति खतरनाक बन गयी। मुख्य समाचार पत्र अक्सर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रयी राजनीति में परिणाम प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अनावश्यक रूप से आगे बढ़ जाते थे। 1870 में बिस्मार्क के ई.एम.एस. तार को प्रकाशित करने के कारण पेरिस में अति राष्ट्रवादी जनमत को बढ़ावा मिला। और उसने फ्रैंको-प्रशियन युद्ध की संभावनाओं को प्रबल बना दिया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यूरोपीय राजनीति में तनाव पैदा करने में प्रेस ने कितनी बड़ी भूमिका निभाई।

13.2.6 तात्कालिक कारण

आस्ट्रियन हैब्सबर्ग साम्राज्य सन् 1900 के बाद से उभरते हुए राष्ट्रवाद की चेतावनी से जूझ रहा था। बहुराष्ट्रीय साम्राज्य पर निरंतर नियंत्रण बनाए रखना दुष्कर था। ऐसी परिस्थिति में जबकि विएना में राजनैतिक एवं सैनिक नेतृत्व काउंट बर्च टोल्ड एवं कोनार्ड के हाथों में था, यह काम और भी मुश्किल हो गया था। आस्ट्रिया को सर्बिया के संदर्भ में एक और पाइडमाँट (Piedmont) अथवा एक और प्रशिया नजर आया और उन्हें जर्मनी एवं इटली के एकीकरण की प्रक्रिया में बिस्मार्क एवं कैवर के हाथों 1859 एवं 1866 में देश की अपमानजनक हार का स्मरण आया। 1914 तक सर्बिया के नेतृत्व में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए स्लाव जनता का इसी प्रकार का आंदोलन उभरा। यद्यपि कि यह देश काफी छोटा था एवं इसकी जनसंख्या केवल पचास लाख के आसपास थी किंतु इसके जनमानस में ऐसी शक्ति एवं ऊर्जा थी जो भावी युगोस्लाविया की नींव रख सकती थी।

सर्बिया केवल हैब्सबर्ग के लिए ही चिंता का कारण नहीं था किंतु जर्मनी के एकीकरण में बाधा था एवं बालकानों के मध्य मित्रसंधि के प्रभाव का केंद्र बिंदु भी था। सर्बिया जर्मन-आस्ट्रियाई-तुर्की संधि में धुरी का काम कर सकता था। इस प्रकार साराजीवो द्वारा उत्पन्न किया गया संकट केवल आस्ट्रिया एवं सर्बिया के बीच का झगड़ा न रह गया बल्कि दोनों महान् संधियों की शक्ति परीक्षा का कारण बन गया। वह घटना जिसके कारण युद्ध आरंभ हुआ एक धर्मांध व्यक्ति द्वारा जिसके संबंध सर्बियाई सरकार से स्थापित नहीं किए जा सके, हैब्सबर्ग के सिद्धांत के उत्तराधिकारी की हत्या थी। 28 जून 1914 के आर्कड्यूक फ्रैंज फर्डिनांड और उसकी पत्नी ने साराजीवों की राजधानी बोसनियन का दौरा किया और आस्ट्रियाई सेरो, गार्विलो प्रिंसिप के द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी। विएना ने हत्या को सर्बिया द्वारा युद्ध भड़काने का प्रयास घोषित किया और, ऐसी माँगे प्रस्तुत कीं जो नकारी ही जानी थी, फलतः 28 जुलाई को विएना की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी गयी। संधि की भावना बनी ही हुई थी और दो हथियार बंद शक्तियाँ अंततोगत्वा टकरा कर ही रहीं। ब्रिटेन के विदेश सचिव ने इस परिस्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा था, "पूरे यूरोप में अंधेरा छा रहा है और हम अपने जीवन में फिर रोशनी न देख सकेंगे।"

बोध प्रश्न-1

1 नीचे दिए गए वक्तव्य पढ़े और सही (✓) अथवा गलत (×) के निशान लगाएँ।

i) प्रथम विश्व युद्ध के कारणों को जानने के लिए यूरोप के 19वीं शताब्दी के इतिहास

को जानना अत्यावश्यक है।

ii) द्विपक्षीय संधि, तीनपक्षीय संधि के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में गठित हुआ था।

iii) राष्ट्रीयवाद के उत्थान से यूरोपीय देशों में एक दूसरे के प्रति शंका एवं बैर का वातावरण बन गया।

iv) यूरोप में साम्राज्यवादी आवश्यकताओं के विस्तार ने युद्ध के तात्कालिक कारण का काम किया।

2 तीनपक्षीय संधि में शामिल देशों के नाम बताएँ। संधि का उद्देश्य क्या था?

....

....

3 यूरोपीय देशों पर सैन्यवाद का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

13.3 युद्ध के परिणाम

आप देखेंगे कि 1914 का युद्ध कई मामलों में मानवीय इतिहास में अनोखा रहा है। इससे पहले भी यूरोपीय देशों के बीच युद्ध होते रहे थे जिनमें कई देश शामिल होते थे। किंतु यह युद्ध अत्यधिक संगठित देशों के बीच का टकराव था। जिनके पास संपूर्ण आधुनिक टेकनालॉजी के संसाधन मौजूद थे और आक्रमण एवं रक्षा के सभी दाँव पेंच उन्हें मालूम थे। यह प्रथम युद्ध था जिसके पनपने एवं सुदृढ़ होने में पूरे 19वीं शताब्दी का समय लगा था। युद्ध में शामिल शक्तियों ने इस युद्ध में पूरी निष्ठा एवं उत्तेजना के साथ हिस्सा लिया क्योंकि उनका विश्वास था कि यह युद्ध ऊँचे आदर्शों एवं अस्तित्व में बने रहने के लिए लड़ा जा रहा था। यह युद्ध जल, थल एवं आकाश में सभी तरीकों से लड़ा गया था। युद्ध में नये आर्थिक संसाधन और यहाँ तक मनोवैज्ञानिक युद्ध नीति का भी उपयोग किया गया क्योंकि युद्ध में शामिल देशों का विश्वास था कि यह युद्ध जनयुद्ध था। यह युद्ध जनसमूहों के बीच का युद्ध था केवल सेनाओं और जनसेनाओं के बीच का नहीं। युद्ध तुरंत ऐसी स्थिति में पहुँच गया जहाँ सेनाओं अथवा नेताओं के लिये यह बहुत मुश्किल हो गया था कि वे इसके भविष्य पर नियंत्रण रख सकें। स्वाभाविक ही था कि ऐसे युद्ध के दूरगामी परिणाम होते। यहाँ हम उनमें से कुछ परिणामों पर विचार करेंगे

13.3.1 मानव जीवन की क्षति

युद्ध के दौरान मानव जीवन और भौतिक संपदा के रूप में काफी बड़ा नुकसान हुआ। लाखों जाने गयीं। सबसे अधिक नुकसान रूस का हुआ और वहाँ मरने वालों की संख्या बीस लाख तक पहुँच गयी थी। इसी प्रकार जर्मनी के भी लगभग बीस लाख लोग मारे गये, फ्रांस और उसके उपनिवेशों को मिलाकर तेरह लाख के आसपास लोग मारे गए और ऐसी ही कुछ स्थिति आस्ट्रिया की भी रही। ब्रिटेन के भी लगभग दस लाख लोगों ने अपनी जाने गँवायीं। अमरीका के लगभग एक लाख लोग इस युद्ध में मारे गये। कुल मिलाकर लगभग एक करोड़ लोगों ने अपनी जानें गँवायीं और इनमें से अधिकतर चालीस वर्ष से भी कम आयु के थे। इस संख्या के दुगने लोग घायल हुए और अधिकांश हमेशा के लिए अपंग हो गये। एक फ्रांसीसी अनुमान के अनुसार 1914 और 1917 के बीच हर मीनट एक फ्रांसीसी अपनी जान गँवाता रहा। निश्चित रूप से मरने की ये दर किसी भी यूरोपीय युद्ध में नहीं देखी गयी थी। इतनी बड़ी संख्या में मानव-जीवन के नुकसान ने लिंग और आयु दोनों स्तरों पर जनसंख्या की संरचना को बुरी तरह प्रभावित किया। महिलाओं में जान का नुकसान कम हुआ था। इस प्रकार जहाँ 1911 में ब्रिटेन में प्रति 1000 पुरुष पर 1067 महिलायें थीं, 1921 में ये अनुपात प्रति 1000 पुरुष 1093 महिलायें पर हो गया। इस परिवर्तन के कारण समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का उभरना स्वाभाविक ही था।

13.3.2 सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन

उन सभी देशों में जहाँ नारी उत्थान आंदोलन 1914 के पहले शुरू हो चुका था, युद्ध के कारण उनमें काफी तेजी आ गयी। 1918 में ब्रिटेन में तीस वर्ष से ऊपर की महिलाओं को संसदीय चुनाव में मत देने का अधिकार प्राप्त हो गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि युद्ध के लिए संपूर्ण राष्ट्रीय प्रयास की आवश्यकता थी और आधुनिक युद्ध में असैनिक जन समूहों में उत्साहवर्धन और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना उतना ही महत्वपूर्ण बन चुका था जितना कि सैनिकों को लेकर युद्ध करना। महिलाओं ने सभी गतिविधिओं में भाग लिया। फैक्ट्रियों में काम किया, दुकानों, दफ्तरों एवं स्वैच्छिक सेवाओं में भाग लिया तथा अस्पतालों और स्कूलों को चलाया। उन्होंने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया और उनके समक्ष बराबरी का दावा पेश किया। उनके लिये अब उद्योगों और व्यापारों में काम करना आसान हो गया था क्योंकि काम के परंपरागत् तरीके अब समाप्त कर दिये गये थे। युद्ध क्षेत्र में बराबर के सहयोगी होने के कारण समाज के अंदर वर्ग और धन के बंधन काफी हद तक कमजोर पड़ गये थे। सामाजिक मूल्यों में भी काफी बड़ा परिवर्तन आया और युद्ध से फायदा उठाने वाले लोग समाज के अंदर विशेष रूप से नफरत की निगाह से देखे जाने लगे।

यूरोप में हुए पिछले युद्धों के मुकाबले में इस युद्ध की लागत में अद्भुत रूप से बढ़ोतरी हुई--नेपोलियन के साथ 20 वर्ष के युद्ध में ब्रिटेन के ऋण में आठ गुना बढ़ोतरी हुई जबकि 1914 से 1918 के बीच यह ऋण बारह गुना हो गया। ऐसा अनुमान है कि युद्ध में शामिल देशों का लगभग 1860 खरब (186 बिलियन) डालर का नुकसान हुआ। इतनी बड़ी धनराशि ध्वंसकारी कार्यों में लगने से निश्चित रूप से मानवीय कार्यों, चाहे वह शिक्षा हो अथवा स्वास्थ्य या कोई अन्य कार्य, का काफी बड़ा नुकसान हुआ क्योंकि यही धन इन कार्यों में भी लगाया जा सकता था। युद्ध से पूर्व विश्व व्यापार को बढ़ावा देने वाले सारे प्रयास बुरी तरह प्रभावित हुए। यह आर्थिक उथल-पुथल युद्ध का सबसे अधिक चिन्ताजनक परिणाम रही। युद्ध ने यूरोप की औद्योगिक प्रभुसत्ता समाप्त कर दी और चार वर्ष के बाद जब यूरोप ने इस झटके से उभर कर फिर से इस क्षेत्र में हाथ डाला तो बाकी देशों से स्वयं को काफी पीछे पाया। अमरीका ने निर्यात में काफी प्रगति की और दक्षिण अमरीका एवं भारत में काफी स्थानीय उद्योग पनपे। जापान ने कपड़ा व्यापार में प्रवेश किया और चीन, भारत और दक्षिणी अमरीका के बाजार माल से भर दिए। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का नक्शा एकदम बदल गया। जब यूरोपीय नेताओं ने सामान्य स्थिति बनाने का आह्वान किया, जिसका अर्थ 1913 की विश्व स्थिति में जाना था, तो उनके विचार में यह नहीं आया कि आधुनिक युद्ध भी एक प्रकार की क्रांति है और 1913 का विश्व इतिहास का उसी प्रकार से हिस्सा बन चुका था जिस प्रकार हैब्सबर्ग एवं रोमानोफ साम्राज्य इतिहास का हिस्सा थे। जैसा कि कहा जा चुका है, युद्ध के बाद के सभी आर्थिक नारे किसी न किसी रूप में यूरोप को विश्वयुद्ध से पहले के स्तर पर लाने से संबंधित जैसे, पुनर्निर्माण, क्षतिपूर्ति, पूर्ववत् संबंध, युद्ध ऋणों के भुगतान और सोने स्तर को पूर्ववत् बनाना आदि।

युद्ध के बाद के दौर में बालकान में राष्ट्रवाद की जड़े इतनी मजबूत हो चुकी थी कि वे एक संतुलित राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से कम स्तर रखने वाले किसी भी समाधान के विरुद्ध हिंसात्मक रुख अपना रहे थे, नए-नए औद्योगिक राष्ट्र अपनी रक्षा के लिए प्रयासरत् थे जबकि--पुराने औद्योगिक केंद्र नए विरोधियों के मुकाबले में अपनी टूटी हुई अर्थव्यवस्था की सुरक्षा चाहते थे।

फ्रांस को अल्सेस (Alsaece), एवं लोरेन (Larraine) उसके साथ बने रहने तथा 15 वर्षों तक सार (Saar) कोयला खदानों को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेने के कारण आर्थिक पुनर्निर्माण में काफी सहायता मिली। किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी आर्थिक समस्याएँ भी थीं जो केवल जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति करने से नहीं सुलझ सकती थीं। उदाहरण के लिए बेल्जियम के महत्वपूर्ण रेलमार्ग 2400 मील की रेल पटरी ध्वस्त हो जाने के कारण बर्बाद हो गए थे और युद्ध के अंत तक केवल 20 लोकोमोटिव देश में बचे थे, इसकी 51 स्टील मिलों से आधी से अधिक बिल्कुल तबाह हो गयीं और शेष बुरी तरह प्रभावित हुईं; दरअसल इस प्रकार का नुकसान प्रत्येक राष्ट्र को हुआ था। पुनर्निर्माण के आरंभिक चरण वास्तव में काफी दुष्कर थे क्योंकि अपंग सैनिकों के लिए काम उपलब्ध कराना, बेघर हुए लोगों को घर उपलब्ध कराना, उद्योगों को सामान्य गति देना सरल कार्य न था।

13.3.3 जनतांत्रिक आदर्श

अपनी तमाम तबाहियों के बावजूद युद्ध के परिणामस्वरूप जनतांत्रिक आदर्श एवं विचार भी उभरे जो कि युद्ध के पूर्व जनमानस के लिए अपरिचित संकल्पनाएँ थीं: युद्ध की घोषणा विश्व को जनतांत्रिक मूल्यों के लिए सुरक्षित बनाने के लिए की गयी थीं। स्वाभाविक ही था कि नए-नए स्वतंत्र राष्ट्र अपने देश में जनतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए तत्पर थे। एक के बाद एक देश प्रजातांत्रिक संविधान तैयार करते जा रहे थे। स्वयं जर्मनी ने इस दिशा में पहल करते हुए वीमर (Weimar) गणराज्य की स्थापना में आज तक का सबसे संपूर्ण जनतांत्रिक संविधान लिखा। इस संविधान का आधार ब्रिटेन, स्विटजरलैंड, फ्रांस एवं अमरीकी प्रजातंत्र थे। किन्तु नए प्रजातंत्र का सबसे कमजोर पक्ष यह था कि यह उस सामाजिक ढांचे पर लादा जा रहा था जो कि आश्चर्यजनक रूप से बहुत ही कम परिवर्तित हुआ था। जनसमूहों को एक सूत्र में बाँधने में केवल एक ही सामान्य भावना थी और वह थी अपने राष्ट्र की हार एवं सहयोगी राष्ट्रों द्वारा शांति के शर्तों के विरुद्ध लौकिक राष्ट्रीय रोष। नयी सत्ता देर तक नहीं टिक सकती थीं क्योंकि उसमें प्रजातांत्रिक आधारों पर प्रशासन चलाने की संरचनात्मक योग्यता नहीं थी।

इसी प्रकार अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में जहाँ भी प्रजातंत्र की नींव पड़ी, अपने अधूरे स्वरूप के कारण उनकी स्थिति डाँवाडोल रही। युद्ध के बाद थोड़े समय के लिए पूरे यूरोप में प्रजातांत्रिक मूल्य फैले। युद्ध ने पूरे विश्व को इस भावना से ओत-प्रोत किया। किन्तु शीघ्र ही ऐसा महसूस किया गया कि संसदीय प्रणाली की सरकारों ने पश्चिमी राजनैतिक मूल्य उन राष्ट्रों पर थोप रहे थे जिन्हें स्वराज्य का थोड़ा बहुत ही ज्ञान था और कुछ के पास बिल्कुल नहीं था। युद्ध के द्वारा उभरी राष्ट्रवादी भावना का चरमसीमा पर पहुँचना इन प्रयोगों के लिए उत्तरदायी था किन्तु पश्चिम का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन अभी भी इतना अधिक प्रगति नहीं कर सका था जिसके कारण इस प्रक्रिया में कठिनाई हो रही थी। यूरोपीय शक्तियों के उपनिवेशों में भी स्वराज्य एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने की भावना जोर पकड़ रही थी।

13.3.4 1919 का पेरिस सम्मेलन

1815 की विएना कांग्रेस की अपेक्षा 1919 का पेरिस सम्मेलन का स्वरूप अधिक प्रतिनिधि बोधक था। राजाओं की जगह अधिकतर देशों के प्रधान मंत्री एवं विदेश मंत्री अपने देश का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। केवल राष्ट्रपति वुडरोन विल्सन एवं किंग एलबर्ट इसके अपवाद थे। कुल बत्तीस राष्ट्रों ने इस सम्मेलन में प्रतिनिधित्व किया। सम्मेलन ने जो कुछ भी सफलता अर्जित की उसमें समय, स्थान प्रतिनिधि संघटन, संगठन एवं सम्मेलन की कार्यवाही की प्रक्रिया आदि सभी की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

जहाँ तक समय का प्रश्न है, यह सम्मेलन जर्मनी के साथ युद्ध विराम पर समझौता करने के नौ हफ्ते बाद रखा गया। ऐसा करते हुए अमरीका एवं ब्रिटेन की आंतरिक राजनैतिक स्थिति भी ध्यान में रखी गयी थी। राष्ट्रपति विल्सन ने स्वयं सम्मेलन में हिस्सा लेने का निश्चय किया जिसके कारण दिसंबर में उनके द्वारा कांग्रेस में "संघीय राष्ट्र" संदेश पारित करने तक सम्मेलन नहीं किया जा सका। ब्रिटेन में भी लॉयड जार्ज सम्मेलन से पूर्व चुनाव करवाना चाहते थे जो कि मध्य दिसंबर में पूरे हुए। विजय के उल्लास में "कैसर (Kaiser) को फाँसी दो", "जर्मनी क्षतिपूर्ति करो" और "वीरो की मातृभूमि" जैसे नारे उठे। चुनाव परिणामों से हाउस ऑफ कॉमन्स के स्वरूप में भारी परिवर्तन आया क्योंकि "संसद में ऐसी कठोर मुद्रा वाले लोगों का प्रवेश हुआ जैसे कि उन्होंने युद्ध में महत्वपूर्ण कार्य किए हों।" चुनाव के समय को देखते हुए इसके परिणाम आश्चर्यजनक न थे।

सम्मेलन स्थल का चुनाव भी काफी सोच-विचार कर किया गया था। आरंभ में विएना में सम्मेलन करने का सुझाव आया था लेकिन राष्ट्रपति विल्सन ने पेरिस को प्राथमिकता दी जहाँ कि भारी संख्या में अमरीकी सेनाएँ तैनाल थी। यह सांकेतिक भी हो सकता था क्योंकि 1871 में वर्साइल्स में हॉल ऑफ मिरर के समक्ष प्रथम जर्मन साम्राज्य की घोषणा की जा चुकी थी इसके अतिरिक्त प्रधान मंत्री जार्ज क्लिमेंस्यू (George Clemencoy) जोकि सम्मेलन में सबसे अनुभवी नेता थे और स्वाभाविक रूप से सम्मेलन की अध्यक्षता करने वाले थे, को सेडन (Sedan) का पूरी तरह स्मरण था जबकि फ्रैंको-प्रशियन युद्ध में फ्रांस की हार हुई थीं और इसे ध्यान में रखते हुए सम्मेलन का स्थान पेरिस चुनना उस हार का जवाब हो सकता था।

सम्मेलन प्रतिनिधियों का चुनाव और भी अधिक महत्वपूर्ण था। इसमें केवल सहयोगी मित्र राष्ट्रों का ही प्रतिनिधित्व नहीं था बल्कि "संबद्ध शक्तियाँ" भी इसमें प्रतिनिधित्व कर रही थीं। युद्ध के अंतिम दिनों में मुख्यतः इस उद्देश्य से कई देश युद्ध में शामिल हो गए थे कि वे अंतिम समझौते में हिस्सेदारी कर सकें। जिन तीन मुख्य पक्षों को प्रतिनिधित्व नहीं मिला था वे थे : गैर संबद्ध शक्तियाँ, रूसी जोकि अभी भी गृह युद्ध एवं हस्तक्षेप के युद्ध का सामना कर रहे थे और भूतपूर्व शत्रु, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, बुलगारिया और तुर्की, इन शक्तियों की अनुपस्थिति भविष्य की परिस्थितियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। विशेष रूप से जर्मनी की अनुपस्थिति से डिकटाट (Dictat) (जो कि उस पर लादी गयी व्यवस्था थी और जिसके लिए न तो जर्मनी अपने को उत्तरदायी समझता था और न ही उसके लिए जर्मनी की दृष्टि में कोई सम्मान था) के रूप में यूरोप को शांति प्राप्त हुई थी। समझौते की प्रक्रिया में यह कदम सबसे ज्यादा कमजोर पक्ष सिद्ध हुआ।

चित्र 2 : रूसी और जर्मन सैनिक साथ-साथ

अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद, पेरिस सम्मेलन विश्व में किसी भी मौके पर हुआ सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण सम्मेलन था, सम्मेलन में 32 प्रतिनिधि मण्डल शामिल थे जोकि विश्व की तीन चौथाई जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। किन्तु क्योंकि स्वयं युद्ध बड़ी शक्तियों के बीच का युद्ध था इसलिए इस मौके पर भी सारा नियंत्रण दस लोगों की एक समिति के हाथ में था। इस समिति में पाँच बड़े राष्ट्र; अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली एवं जापान के दो दो सदस्य शामिल थे। शीघ्र ही जापान ने कार्यवाही में रुचि लेना बंद कर दिया और अलग-थलग रहा। अप्रैल 1919 के अंत तक इटली ने भी हाथ खींच लिया और अंततः विख्यात "तीन बड़े राष्ट्र" सारी कार्यवाही चलाते रहे। जैसा कि आप जानते हैं कि इन "तीन बड़े राष्ट्रों" का प्रतिनिधित्व अमरीकी राष्ट्रपति 'विल्सन', फ्रांसीसी प्रधान मंत्री क्लीमेंस्यू एवं ब्रिटेन के प्रधान मंत्री लॉयड जार्ज कर रहे थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सम्मेलन अंततः दो विरोधी हितों वाले व्यक्तियों के बीच समझौता था। विल्सन आदर्शवादी थे और प्रजातंत्र तथा लीग ऑफ नेशन्स के प्रति कटिबद्ध थे। दूसरी ओर क्लीमेंस्यू पुरानी परंपरा के यथार्थवादी थे और जर्मनी, जोकि फ्रांस की सुरक्षा पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाए हुए था, के प्रति द्वेष की भावना से ओत-प्रोत थे।

इस प्रकार सम्मेलन आदर्शवाद एवं यथार्थवाद के मूल्यों के बीच टकराव के रूप में परिवर्तित हो गया। इसके अतिरिक्त, सभी राष्ट्रों एवं अधिकतर राजनेताओं के अंतर्द्वंद्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सम्मेलन का स्वरूप वैसा ही था जैसा कि 1919 के दौर में लोगों की मानसिकता बन चुकी थी। सम्मेलन एक ओर आशा एवं आदर्शों एवं दूसरी ओर उत्पीड़ित जनता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में प्रतिशोध एवं प्रतिकार की भावना के तनावों के बीच घिरी हुई थी। आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसी पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह सम्मेलन संतोषजनक परिणाम क्यों नहीं दे सका। ऐसी परिस्थिति में जहाँ लचीलापन आवश्यक था वहाँ सम्मेलन ने कठोर रुख अपनाया और जहाँ कठोरता एवं दृढ़ता की आवश्यकता थी वहाँ कमजोरी सामने आई। इतिहासकार डेविड थामसन (David Thamson) के शब्दों में "इतिहास में पेरिस सम्मेलन एक स्पष्ट असफलता का प्रतीक है, लेकिन यह असफलता मानव बुद्धि की असफलता और अंशतः सांगठनिक एवं कार्यविधियात्मक असफलता थी। इसका कारण अति यथार्थवाद अथवा आदर्शवाद की कमी नहीं बल्कि दोनों का गलत इस्तेमाल था।"

13.3.5 नया शक्ति संतुलन

जैसा कि आपने पहले पढ़ा है, महायुद्ध केवल युद्ध ही नहीं था बल्कि जीवन के हर पहलू में एक क्रांति थी। सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में भयानक उथल-पुथल की भाँति ही विश्व में शक्ति संतुलन के अस्थायी पुनर्वितरण की समस्या भी थी। इस युद्ध के परिणामस्वरूप पुराने रूस, आस्ट्रिया-हंगरी, जर्मनी एवं तुर्की साम्राज्यों का राजनैतिक एवं सैनिक पतन हो चुका था। युद्ध से पूर्व के जर्मनी एवं आस्ट्रिया का प्रभुत्व एक समय के लिए समाप्त हो गया। शांति के संस्थापकों का बुनियादी उद्देश्य यह निश्चित करना था कि जर्मनी पर नियंत्रण रखा जा सके और सैनिक रूप में उसे कमजोर किया जा सके। राष्ट्रीय गठन, आर्थिक उपयुक्तता एवं सैन्य सुरक्षा से संबंधित उभरती हुई नयी वास्तविकताओं की दृष्टि से पूर्वी एवं मध्य यूरोप का नए सिरे से नक्शा तैयार करने की भी एक समस्या थी।

जर्मनी को कमजोर बनाने के लिए कई उपाय किए गए। जर्मन सेनाओं को उनके द्वारा प्राप्त किए गए संपूर्ण भू-भागों से हट जाने का निर्देश दिया गया। अल्सेस एवं लोरेन फ्रांस को दोबारा प्राप्त हो गए। जर्मनी को राइन नदी (Rhine) के बाएँ किनारे को किलाबंद करने की अनुमति नहीं थी। उसकी सेना की संख्या घटाकर 100,000 कर दी गयी और हथियारों के उत्पादन पर पाबंदी लगा दी गयी। इसी प्रकार की कार्यवादी नौसेना एवं उपनिवेशों के संदर्भ में भी की गयी। जर्मन नौसेना दस हजार टन के 6 लड़ाकू जहाज 12 नाशक जहाज एवं 12 पनडुब्बी नावों से अधिक नहीं रख सकती थी। सबमैरीन जहाज रखने की उन्हें अनुमति नहीं थी। उन्हें उपनिवेशों पर से अपने सारे अधिकार समाप्त करने थे। एक निर्देश के तहत जर्मन साम्राज्य सहयोगी शक्तियों के बीच उस समय उनके द्वारा अधिकृत क्षेत्रों के आधार पर बाँटा गया। बाद में लीग ऑफ नेशन्स को इन क्षेत्रों में प्रशासन की निगरानी की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

दूसरी महत्वपूर्ण समस्या, जैसा कि बताया जा चुका है, पूर्वी यूरोप के पुनर्गठन की थी, पश्चिमी यूरोपीय शक्तियों के समक्ष "पूर्वी प्रश्न" बड़े लंबे समय से बना हुआ था। महायुद्ध ने इस समस्या को और भी अधिक बढ़ा दिया। पुराने आस्ट्रियाई साम्राज्य पर इटली एवं पूर्वी यूरोप में उभरे नए राष्ट्रों को अपने अधिकतर क्षेत्र सौंप देने के लिए दबाव डाला गया। हैब्सवर्ग का दूसरा आधा भाग और भी कठोर बर्ताव का शिकार बना। इसका सबसे अधिक फायदा सर्बिया को हुआ जो कि युगोस्लाविया के नए दक्षिणी स्लाव राज्य में परिवर्तित हुआ।

स्वयं तुर्की युद्ध में हार के परिणामस्वरूप आंतरिक राजनैतिक उथल-पुथल के दौर से गुजरा। मुस्तफा कमाल ने सेवरज़ (Sevreg) संधि जो कि तुर्की एवं सहयोगी शक्तियों के बीच हुई थी, के विरुद्ध राष्ट्रवादी उथल-पुथल को नेतृत्व प्रदान किया। इस दबाव के कारण 1923 में "लाजेन संधि" के नाम से एक नई संधि पर हस्ताक्षर किए गए। कमाल ने अरब बाहुल्य प्रदेशों पर से सारे दावे वापस ले लिए और तुर्की राज्य के इस्लामी आधार को त्याग दिया। मुस्तफा कमाल की अध्यक्षता में एक नए तुर्की गणराज्य की स्थापना हुयी, जैसा कि आप समझ सकते हैं, पूर्वी यूरोप के इस पुनर्गठन ने लगभग उतनी ही समस्याओं को जन्म दिया जितनी समस्याओं का इसने समाधान प्रस्तुत किया। इससे कई मध्यम शक्तियों का जन्म हुआ जैसे पोलैंड, रूमानिया व यूगोस्लाविया। इससे अरब राष्ट्रीयता और फिलिस्तीन में यहूदी

राष्ट्र बनाने की आशाओं को बढ़ावा मिला जिससे कई जटिलतायें पैदा हुयीं जो अभी भी अंतर्राष्ट्रीय तनाव का कारण हैं। इस पुनर्गठन से अल्पसंख्यकों के अधिकारों और उनकी रक्षा की नयी समस्या सामने आयीं।

पूर्वी यूरोप का यह पूरा पुनर्गठन दरअसल यूरोप में बोलशेविक विचारों के फैलने के डर को देखते हुए किया गया था। इतिहासकार डेविड थॉमसन के शब्दों में :

''फिनलैंड से लेकर पोलैंड एवं रूमानिया तक पूर्वी राज्यों को अधिक से अधिक विस्तृत एवं मजबूत बनाने के जोरदार प्रयास जारी थे जिससे कि यह क्षेत्र कम्यूनिज्म के ज्वार को आगे न बढ़ने देने में रक्षा पंक्ति रूप में, उसके प्रभाव में रुकावट डालने वाले क्षेत्र के रूप में कार्य कर सकें।''

13.3.6 अंतर्राष्ट्रीय साधन

लीग ऑफ नेशन्स का गठन ''शक्ति की राजनीति'' की पुरानी प्रणाली के विकल्प के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संस्था तैयार करने के उद्देश्य से किया गया था। यह संस्था झगड़ों के शांतिपूर्ण समाधान का साधन थी जिसने पुरानी गुप्त कूटनीतिज्ञता एवं स्वतंत्र गठबंधनों और शक्ति संतुलन के प्रयासों की पुरानी प्रणाली का विकल्प प्रस्तुत किया। आप जानते हैं कि 1914 में यूरोपीय संदर्भ में विश्व की परिस्थितियाँ कितनी असामान्य थी। ये परिस्थितियाँ ''अंतर्राष्ट्रीय अराजकता'' के रूप में व्याख्यायित की जाती हैं, हालाँकि यह स्थिति अर्ध-अराजक थी जबकि औपनिवेशिक, राजवंशीय एवं राष्ट्रीय झगड़ों ने पूरे यूरोप को युद्ध की भयानक आग में झोंक दिया।

लीग ऑफ नेशन्स की योजना राष्ट्रपति विल्सन ने बड़े उत्साह के साथ प्रस्तुत की। अंततः यह योजना ब्रिटेन एवं फ्रांस के प्रस्तावों को शामिल करके संशोधित की गयी। एक तरह से लीग यूरोप की एकबद्धता की संकल्पना का विस्तृत रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण था जोकि अब विश्व की एकबद्धता की संकल्पना के रूप में था। दूसरी ओर लीग में कुछ नयापन एवं भिन्नता भी थी क्योंकि इसके अंतर्गत प्रत्येक सहभागी को सभी झगड़ों को शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाने तथा किसी भी आक्रमण की स्थिति जिम्मेदारी की भागीदारी की शपथ लेनी थी।

लीग किसी भी रूप में सरकार तो नहीं थी लेकिन सरकारों द्वारा शांति स्थापित करने में सहयोगी के तौर पर इस्तेमाल की जा सकती थी। ऐसा प्रकट होता है कि यह संस्था काफी अर्थपूर्ण एवं समीचीन थी लेकिन युद्धोपरांत विश्व के संदर्भ में केवल कुछ ही मान्यताओं की दृष्टि से इसे सफलता मिली। इसकी मुख्य मान्यता यह थी कि सभी सरकारें शांति चाहेंगी जो कि मारकाट एवं बर्बादी के विरुद्ध पनपी भावनाओं के संदर्भ में एक औचित्यपूर्ण मान्यता थी। यह मान्यता इस दृष्टि से और भी औचित्यपूर्ण लगती थी और जैसा कि पिछले पृष्ठों पर आपने पढ़ा है कि प्रजातांत्रिक सरकारों की संख्या बढ़ रही थी और ये प्रजातांत्रिक सरकारें पिछली नौकरशाहियों एवं राजवंशी साम्राज्यों के मुकाबले में अधिक शांतिप्रिय स्वरूप की थीं। लेकिन जैसा कि बताया जा चुका हैं कि यह प्रजातांत्रिक संविधान कमजोर सिद्ध हुआ और प्रजातांत्रिक आदर्शों को अपनाने में इनकी रुचि थोड़े ही समय तक रही। ऐसी आशा कि संतुष्ट राष्ट्रवाद अब शांति की ओर मुड़ेगा तुरंत ही गलत सिद्ध हो गयी। इस प्रकार इन मान्यताओं के दृष्टिकोण से लीग ऑफ नेशन्स को मजबूत स्थायित्व और आवश्यक कार्यशक्ति प्राप्त न हो सकी।

अमरीका का लीग का सदस्य बनने में असफलता और जर्मनी और रूस के लीग से बाहर होने के कारण लीग केवल समझौतों के लिए आधार ही तैयार कर सकी। जापान ने भी केवल नाममात्र के लिए रुचि दिखाई। केवल ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल, फ्रांस एवं इटली ही इसके सदस्य थे। इटली ने भी शीघ्र ही अपने फासीवादी नेता मुसोलिनी की आक्रमक नीति के तहत लीग की अवहेलना कर दी। लीग शांति स्थापित करने के अपने मुख्य उद्देश्य में असफल रही, यद्यपि कि कुछ छोटे-मोटे झगड़े सुलझाने में इसे सफलता अवश्य मिली। जब भी राष्ट्रों ने ईमानदारी के साथ समाधान के प्रावधान के समक्ष झगड़े प्रस्तुत किए, लीग ने सफलता पायी। लीग ने आलैंड (Aaland) द्वीप से संबंधित फिनलैंड और स्वीडेन के झगड़े का समाधान प्रस्तुत करने में सफलता अर्जित की। तीन मौकों पर लीग ने झगड़ा ग्रसित बालकान क्षेत्र में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। इसने ईराक एवं तुर्की के सीमा संबंधित झगड़े भी

सुलझाए। जैसा कि बताया जा चुका है कि लीग के पास अपने निर्णय लागू करने के प्रभावशाली साधन नहीं थे और इसलिए जहाँ भी बड़ी शक्तियों के बीच तनाव उत्पन्न हुआ वहाँ लीग शांति स्थापित करने में सफल न हो सकी।

लीग की दो महत्वपूर्ण सहयोगी संस्थाएँ इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस और इंटरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन (आई. एल. ओ.) थी। पहली संस्था का कार्य राष्ट्रों के झगड़े निपटाना था और दूसरी संस्था श्रम से संबंधित समस्याओं में हस्तक्षेप करती थी। आज के संदर्भ में ये दोनों संस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशन्स) की संरचना का महत्वपूर्ण भाग है।

13.4 विश्वयुद्ध और भारत

यद्यपि भारत युद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़ा हुआ था लेकिन इसके प्रभावों से यह नहीं बच सका। विश्व युद्ध ने भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यह देखना महत्वपूर्ण है कि भारतीय जनसंख्या के विभिन्न वर्गों पर विश्व युद्ध का विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ा। भारत के सबसे निर्धन वर्गों के लिए युद्ध का अर्थ निर्धनता में और अधिक वृद्धि थी। युद्ध के कारण लोगों पर भारी कर भी लगाए गए। युद्ध की आवश्यकताओं ने कृषि उत्पादनों एवं अन्य रोजमर्रा की आवश्यकताओं को दुर्लभ बना दिया। परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुयी। ऐसी भयावह स्थिति में जनता सरकार के विरुद्ध होने वाले किसी भी आंदोलन में शामिल होने को तैयार हो गई। नतीजे के तौर पर युद्ध के वर्ष तीव्र राष्ट्रवादी राजनैतिक आंदोलन के भी वर्ष हो गए। शीघ्र ही असहयोग आंदोलन के रूप में गांधी के नेतृत्व में एक विस्तृत जन आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसके विषय में आप अगली इकाई में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

दूसरी ओर युद्ध के कारण उद्योगपतियों को बेहद लाभ पहुँचा। युद्ध के कारण ब्रिटेन में आर्थिक संकट पैदा हो गया था और युद्ध की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उन्हें भारतीय उद्योगपतियों पर निर्भर होना पड़ा। उदाहरण के लिए इस अवधि में जूट उद्योग काफी तेजी से बढ़ा। इस दृष्टि से युद्ध के कारण भारत में औद्योगिक उन्नति हुई। भारतीय उद्योगपतियों ने इस अवसर का भरपूर लाभ उठाया। और वह उसे युद्ध के बाद भी सुरक्षित रखना चाहते थे। इसीलिए वे स्वयं को संगठित करने और संगठित राष्ट्रीय आंदोलन में सहयोग करने को तैयार थे।

इस प्रकार युद्ध के साथ भारतीय जनसमुदाय के विभिन्न वर्गों के अंदर राष्ट्रीयता की भावना भी आयी, यद्यपि विभिन्न वर्गों के अंतर्गत इसकी प्रक्रिया भिन्न रही। भारत की स्वतंत्र आर्थिक प्रगति भी स्वरूप लेने लगी जिसे विकसित होने में अगले कई वर्ष लगने थे। आगे की इकाई में इस विषय की विस्तृत व्याख्या की जाएगी।

बोध प्रश्न-2

1 **विश्वयुद्ध के कारण विभिन्न देशों में आए सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों पर एक नोट लिखिए।**

....

....

....

....

....

2 **लीग ऑफ नेशन्स की दो सहयोगी संस्थाओं के नाम लिखिए। उनके कार्यक्षेत्र क्या थे?**

....

....

....

....

....

3 निम्न वक्तव्यों में से कौन से सही (√) हैं और कौन से गलत (×)?
   i) पिछले अधिकतर युद्धों के विपरीत प्रथम विश्व युद्ध केवल सेनाओं के बीच ही नहीं लड़ा गया बल्कि जनता के बीच भी लड़ा गया।
   ii) युद्ध के दौरान मानव जीवनों के नुकसान ने यूरोपीय जनसंख्या की संरचना को लिंग और आयु वर्ग दोनों ही रूपों में प्रभावित किया।
   iii) विश्व युद्ध के कारण जनतांत्रिक विचारों एवं मूल्यों के फैलने में रुकावट आयी।
   iv) युद्ध से भारतीय जनसंख्या के सभी वर्ग समान रूप से प्रभावित हुये।

13.5 सारांश

यहाँ हमारा उद्देश्य आपके समक्ष प्रथम विश्वयुद्ध के मुख्य कारण और परिणाम प्रस्तुत करना था। आपने महसूस किया होगा कि 1914 में सहयोगी राष्ट्रों का एकमात्र सामान्य उद्देश्य यूरोप से जर्मनी का प्रभुत्व समाप्त करना था। उन्होंने युद्ध रूस में समाजवादी क्रांति लाने, पुराने साम्राज्यों को नष्ट कर देने, नए अरब राष्ट्र स्थापित करने अथवा लीग ऑफ नेशन्स में नये प्रयोग करने के लिए नहीं आरंभ किया था। युद्ध का सबसे अधिक फायदा युद्ध में अंशतः शामिल देशों अथवा गैर शामिल देशों को पहुँचा। अमरीका एक बड़े आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। जापान ने प्रशान्त महासागर में नौसेना शक्ति और महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति प्राप्त की, और भारत ने स्वराज्य प्राप्त करने की ओर काफी महत्वपूर्ण प्रगति की। विजयी सहयोगी राष्ट्रों ने कुछ विशेष लक्ष्य प्राप्त कर सकने के बावजूद विश्व के समक्ष बर्बादी, ऋण, निर्धनता, शरणार्थी, अल्पसंख्यकों की समस्यायें और अपनी आंतरिक गुटबंदी के रूप में कष्टदायक विरासत पेश की।

13.6 शब्दावली

सैन्यवाद : मजबूत सैनिक आधार बनाने की नीति।
श्रेष्ठ अलगाव : उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में यूरोप के झगड़ों में गैर हस्तक्षेप की बर्तानवी नीति के संदर्भ में प्रयोग किये जाने वाला शब्द।
पूर्वी प्रश्न : यूरोप से मध्य पूर्व देशों की समस्याओं से संबंधित शब्द। उदाहरण के लिए तुर्की साम्राज्य के पतन की समस्या, तुर्की साम्राज्य में स्वतंत्रता के लिए यूरोपीय राष्ट्रीयता के संघर्ष और तुर्की में यूरोपीय शक्तियों के हितों में टकराव।

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1 (i) √ (ii) √ (iii) √ (iv) ×
2 उपभाग 13.2.1 पढ़ें।
3 उपभाग 13.2.2 पढ़ें।

बोध प्रश्न-2

1 उपभाग 13.3.2 देखें।
2 उपभाग 13.3.6 देखें।
3 (i) √ (ii) √ (iii) × (iv) ×